राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 69 | अप्रैल-जून 2021 | अंक 1

रामाश्रम सत्संग (रजि.), ग़ाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	कबीर साहब	1
2.	आत्मिक स्वरुप के दर्शन	2
3.	आध्यात्मिक शिक्षा का तरीका	6
4.	अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय	9
5.	पर दोष दर्शन मत करो, मत सुनो	12
6.	श्रद्धांजलि परमसंत डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना जी को	14
7.	गृहस्थ आश्रम की महिमा	17
8.	ध्यान (सूफ़ी कहानी)	19
9.	The Ego and the Dualities	22
10.	Wonders of Ultimate Reality and Misconceptions about Yoga	25

राम संदेश

वर्ष 69 अप्रैल-जून 2021 अंक-1

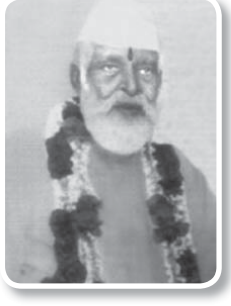

संस्थापक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना जी
सम्पादक : श्री उमा कान्त प्रसाद (आचार्य एवं अध्यक्ष)

कबीर साहब

पानी बिच मीन पियासी मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी।
घर में वसत धरीं नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी ।

जल थल सागर खूब नहावे, भटकत फिरे उदासी।
है हाजिर तेहि दूर बतावें, दूर की बात निरासी।

मृग की नाभि माँहि कस्तूरी, बन-बन फिरत उदासी।
आतमग्यान बिना सब सूना, क्या काबा क्या कासी।

जल-बिच कमल कमल बिच कलियाँ तांपर भँवर निवासी।
कहत कबीर, सुनौ भाई साधो, सहज मिले अविनासी।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज.....

आत्मिक स्वरुप के दर्शन

आत्मा या रूह जिसका वर्णन बार–बार आया है, इस सृष्टि में सबसे अनोखी चीज है। यही सबसे महान एवं सार सत्य है। यह उस सूर्य की किरण या उस समुद्र की एक बूँद है जिससे हम अलग नहीं हैं और वही आत्मा का भंडार है–वही जीवन का केंद्र एवं स्रोत है और इसी केंद्र से विलग अथवा दूर हो जाना ही वास्तव में हमारे दुखों का कारण होता है।

आत्मा के ऊपर से आवरण उतारने और सुरत शब्द के अभ्यास से आशय यह है कि हृदय में इस केंद्र का इष्ट बांध कर अर्थात् उस आदर्श को हृदय में स्थित करके संत सद्गुरु से भेद (यानी अभ्यास का तरीका) मालूम करके इसके खोज की चेष्टा की जाये। यदि किसी तरह तुम्हारे अन्तःकरण में यह भाव पैदा हो जाये कि सत्पुरुष मालिक हमारा केंद्र है और हम उससे निकले हैं तो तुम में प्रेम के भाव प्रस्फुटित होकर तुम्हें विशेष प्रकार की अवस्था प्रदान करेंगे, जिससे स्वतः ही आत्मा तथा माया आदि की समझ आती जाएगी।

यह केंद्र पूर्णतः आत्मिक है और शुद्ध चेतन है। इसमें नाम मात्र को भी काल और माया नहीं है। ज्यों–ज्यों तुम्हारे आवरण उतरते जायेंगे और आत्मिक प्रकाश की अनुभूति का अवसर मिलता जायेगा, वैसे ही वैसे इसी जन्म में प्रेम प्राप्त होता जायेगा। जिन लोगों में अब तक आध्यात्मिकता जागृत नहीं हुई है, वे इस केंद्र से बहुत दूर हैं। जिनके आवरण उतर गए हैं वे अपेक्षाकृत उससे अधिक निकट हैं।

जितना उस केंद्र से बिलगाव औरदूरी होती जाएगी उतने हीआत्म–पथ पर माया के आवरण पड़ते जायेंगे और जितना अधिक केंद्र से निकट आते जायेंगे उतनी ही आत्मिक आनंद की अनुभूति बढ़ती जाएगी।

नीचे स्थूल मंडल है और ऊपर सूक्ष्मता तथा पवित्रता की स्थितियां हैं। मनुष्य मध्यावस्था में माया के मंडल में है। आज हमारी–तुम्हारी कुछ भी अवस्था हो परन्तु चूंकि हम उसके अंश हैं, हमारे लिए कभी मृत्यु नहीं है और न ही हम जीवन की देन से वंचित हो सकते हैं। हमें जो कुछ दुखों की अनुभूति है वह इन सब माया के आवरणों के कारण है और जैसे ही ये आवरण हटे हमको अपने असल रूप की

समझ आयी, तब हम सुखी हो जायेंगे और उस समय हमारे सुख की कोई सीमा नहीं रहेगी। तब पूर्ण ज्ञान एवं शक्ति का केंद्र दृष्टिगोचर होता है। जो जितना इस केंद्र के निकट पहुंचेगा, वह उसी ढंग से शक्शिाली और ज्ञानी होता जायेगा। यह एक सच्चाई है जो हर अभ्यासी को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

सुरत या आत्मा की दिव्यता और कार्यकलाप की महत्तास भी संसार मानता है। इंसान बुद्धि का पुतला कहा जाता है। वह जिस ओर भी ध्यान करता है, उसी ओर आश्चर्यजनक परिणाम पैदा कर के दिखलाया करता है। हर मामले में केवल उसे ध्यान देने की देर है, फिर क्या है जो वह नहीं कर सकता? इस ध्यान शक्ति के ऊपर अधिकार पाने पर आकाशमंडल की छिपी हुईं बिजली जैसी शक्तियां उसके संकेत पर काम करने को तैयार रहती हैं। इस स्थूल माया के मंडल में रहकर भी वह जब कभी मन को कार्य विशेष की ओर एकाग्र करता है तो कमाल कर दिखाता है–क्या इसमें कोई आश्चर्य है? फिर मनुष्य की हस्तकलाएं, उसके विचारों की ऊंची उड़ान तथा उसकी बुद्धि की खोज के तमाशे सभी तो इसके साक्षी हैं। उसमें हर बात को कर दिखाने की संभावित क्षमता है।

जब यह हाल आत्मा का है, जिसकी उपमा समुन्द्र की बूँद से दी गयी है, तो समझना चाहिए कि उस समुन्द्र की शक्ति और ज्ञान की भला क्या सीमा होगी? यह विचार करते ही बुद्धि चक्कर खाने लगती है अथवा आश्चर्यचकित हो जाती है। वह ज्ञान का, आनंद का और असल सत्ता का भण्डार है। इस संसार में जो कुछ प्रकृति का कार्य–कौशल तथा सौंदर्य दृष्टिगोचर हो रहा है वह आकस्मिक मात्र नहीं है, बल्कि वह किसी दिव्यता और प्रकृति की पूर्ण सामर्थ्य एवं सम्पन्नता की झलक प्रस्तुत करता है और परमात्मा की सत्ता का प्रमाण है। यदि किसी प्रकार यह बूँद उसी समुन्द्र में प्रविष्ट हो जाये तो फिर इसके आनंद, शक्ति और ज्ञान का क्या ठिकाना?

हमने सुख के प्रकार तथा सुख के मंडलों और उनके साधान वर्णन कर दिए हैं। इन सब का असल उद्देश्य यह है कि मनुष्य उस सुख के भण्डार की ओर प्रवृत्त हो सके, वरना फिर इसके बीच की अवस्थाओं में भटकाव होने का भय है। सुख के भण्डार की ओर वापस चलने के साधन कठिन नहीं हैं। इन्हें स्त्री–पुरुष, युवा–वृद्ध सब कर सकते हैं। इसके लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि मनुष्य अपने जीवन के काम–काज आदि छोड़ दे, बल्कि आवश्यकता यह है कि आसानी से

जीवन निर्वाह करते हुए सुरत शब्द का अभ्यास करता रहे। जो मनुष्य प्रसन्न रहता है वह परमात्मा की पूजा व उससे प्रेम बहुत आसानी से कर सकता है।

मालिक को प्रसन्न करने की कोशिश करना चाहिए और सारी बातें उसी की इच्छा के अधीन समझना चाहिए। 'तेरी इच्छा पूर्ण हो' – यह महामंत्र हर भक्त और प्रेमी की जिह्वा पर रहना चाहिए. जो इस पर चलने वाले हैं, वे मालिक के किसी काम में दोष नहीं देखते और सदा उसकी याद में प्रसन्न रहने की आदत सीखते हैं। संतों का साधन प्रेम मार्ग है। प्रेमी उस मालिक के बन्दों में अच्छाई देखने का इच्छुक रहता है और बुराई की ओर से अपनी आँखें बंद कर लेता है। विशाल हृदयता, विमलबुद्धि, इच्छा शक्ति और साहस आदि प्रभावों को हृदयंगम करने वाला किसी से घृणा नहीं करता और न दूसरों की शिकायत अपनी जिह्वा पर लाता है। उसको हर काम में 'मालिक की मौज' दिखाई देती है। उसको शान्ति बाह्य ही नहीं बल्कि आंतरिक अनुभूति में होती है। वह बहिर्मुखी साधन नहीं बल्कि अंतर्मुखी साधन करता है। उसको हर जगह मालिक के प्रेम का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। उसे मालिक के प्रेम और दया के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता और वह उस मालिक की मौज को सदा दृष्टि में रखते हुए किसी भी दु:ख–सुख की परिस्थिति में मगन और संतुष्ट रहता है।

जो मनुष्य इस केंद्र की ओरचित्त की वृत्ति को लगाता है वह सिवाय मालिक के और किसी वस्तु को नहीं जानता– न ही वह किसी नाशवान वस्तु के लिए प्रार्थना करता है और न अपने प्रेम, भक्ति के बदले का कोई विचार करता है। वह जो प्रार्थना करता है वह भी इसी प्रसन्नता के कारण से करता है, इस भावना से नहीं कि इससे उसका भला होगा। इससे वह उस परमात्मा के समीप जाता है और इस प्रकार वह नित्य–प्रति उसकी समीपता पाता जायेगा। उसकोऔरक्याचाहिए ? कहा गया है कि परमात्मा को चाहने वाला 'सच्चा प्रेमी है' और संसार को चाहने वाला 'कपटी' है तथा परलोक चाहने वाला 'मजदूर' है क्योंकि वह भक्ति का बदला या मेहनताना चाहता है.

परमात्मा के प्रेमी का सांसारिक सुख पहुंचाने वालों अथवा ऐसे साधु भेषधारियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। भेषधारी की आशा होती है। प्रेमी के मनन का केंद्र परमात्मा (मालिके कुल) होता है। यह इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। भेषधारी ने जो स्वांग बनाया है, वह केवल धन्धों या संसार में भ्रमण करने

आदि सांसारिक उद्देश्यों के लिए है। प्रेमी भक्त अपने अंतर में शब्द का अभ्यास करता हुआ परमात्मा के दर्शन का इच्छुक होता है। उसका काम दिखावे का नहीं होता।

धर्म दिखाने की वस्तु नहीं है। धर्म, साधन, मार्ग, पंथ- ये सब शब्द परमार्थ-पथ के पर्यायवाची हैं. सुरत का उतार प्रथम शब्द के द्वारा हुआ और यह सुरत जहां-जहां उतरी, वहां मंडल बनाकर नीचे को आ गयी. ऊपर प्रकाश है और नीचे अंधकार है। सुरत तो शब्द की डोर को पकड़ कर ऊपर की ओर चलती है। इसकी गति उस मछली के समान है जो पानी की उलटी धार को पकड़ कर आगे बढ़ती जाती है। सुरत ऊपर की ओर शब्द की सहायता से एक स्थान (चक्र) पर पहुँचकर दूसरे स्थान पर जाने की इच्छुक होती है.

और फिर ऐसा ही अभ्यास करते रहने के बाद सुरत निज भंडार में प्रविष्ट हो जाती है, जो अलख है, अगम है, जिसके प्रकाश का अनुमान हजारों, लाखों, करोड़ों और अनगिनत सूर्य-चंद्र के प्रकाश से भी नहीं लगाया जा सकता। न वहां काल है, न धर्म है, न माया है, न स्थूलता है-आकाश के शब्द की संज्ञा भी वहां के लिए प्रयोग नहीं की जा सकती। वाणी और मन की वहां कोई जगह नहीं है। किसी अनुमान आदि की भी वहां पहुँच नहीं है। न वहां दिन है, न रात है, न इसका कोई नाम हैऔर न कोई निशान है।

जो आत्मा वहां तक पहुँच गयी वह फिर सदा के लिए मुक्त हो जाती है, फिर इसको कभी माया के आवरणों का, जन्म-मरण के चक्र का, भय नहीं रहता है। जो वहां पहुंचा वह काल के चक्र से छूट गया। वहअमर हो जाता है। जो आत्मा वहां स्थिति प्राप्त कर लेती है वह अनंत आनंद में मस्त होकर खुशी के गीत गाती हैं और इस अनुपम दशा को संत कबीर जैसी पूर्ण आत्माएं ही बता पाती हैं :

हम वासी उसके जहां, सत्तपुरुष की आन!
सुख-दुःख कोई व्यापे नहीं, सब दिन एक समान!!
कहना था सो कह चुका, अब कुछ कहा न जाय !
एक रहा दूजा मिटा, गया कबीर समाय !!

गुरुदेव परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

आध्यात्मिक शिक्षा का तरीका

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज की आध्यात्मिक शिक्षा को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। एक तो 'चक्रबंधन' या 'चक्रभेदन' और दूसरा 'प्रेम'।
मनुष्यों की देह में नीचे (गुदा का स्थान-मूलाधार चक्र) से लेकर उपर (ब्रह्मरन्ध-सिर की चोटी के स्थान तक छ्ङ्क चक्र होते हैं, छै चक्र गुदा से लेकर माथे तक हैं) क्रमशः गुदाचक्र, इन्द्रीचक्र, नाभीचक्र, हृदय चक्र, कण्ठचक्र, अज्ञाचक्र ।

उनमे से उपर के छै चक्र (सहस्रदलकँवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भाँवरगुफा, सत खंड) दिमाग में होते हैंजहाँ ग्रे मैटर (grey matter) है। इस से उपर के छै चक्र (अलख, अगम, अनामी और (गुप्तचक्र) ब्राइट मैटर) bright matter) में हैं। जो ग्रे मैटर में हैं उनका सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से है, वहां भी छै लोक हैं जिनको जगाना इससे सम्बन्ध रखता है।

अधिकतर संतों ने 18 चक्रों का हाल लिखा है किन्तु गुरुदेव ने 21 चक्रों का होना बताया है। तीन चक्र गुप्त हैं जो वर्णन में नहीं आ सकते हैं केवल अनुभव किये जा सकते हैं। किसी एक चक्र पर पहुंच कर ठहर जाना संतों का लक्ष्य नहीं होता इसलिए बराबर उपर उठते जाते हैं जब तक सब चक्रों को पार करके दयाल देश नहीं पहुंच जाते। दयाल देश संतों का देश है। सत्यलोक असली बैठक उस परमात्मा की है जो तमाम ज्ञान और आनंद का भंडार है। सब धर्मों ने और संतों ने इस बात को माना है कि 'जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे'। परमात्मा ने मनुष्य को अपने रूप पर बनाया और अपना अंश दिया इसलिए परमात्मा अंशी और मनुष्य अंश कहलाया। जो गुण परमात्मा में हैं वही अंश रूप में मनुष्य में हैं। मनुष्य शरीर (जो दृष्टिगोचर होता है) तीन शरीरों की मिलौनीहै। स्थूल, सूक्ष्म और कारण।

अन्य मतों में पहले मूलाधार (गुदा चक्र) को जागृत करने का अभ्यास कराते हैं। प्राणायाम और हठयोग की क्रियाओं से जब इस स्थान को जागृत कर लेते हैं

तब इन्द्रिय के स्थान पर आ जाते हैं वहाँ से भी प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं से इसे और ऊपर उठा कर नाभी चक्र, हृदय चक्र, कण्ठ चक्र और उपर के चक्रों तक ले जाते हैं। यह क्रियाएं बड़ी कठिन है और इसमें समय बहुत लगता है और प्रत्येक व्यक्ति का शरीर भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।

संतों का तरीका इससे न्यारा है इनके यहां नीचे के तीन चक्र (गुदा, इन्द्रिय और नाभी) को छोड़ दिया जाता है। अभ्यास ज्यादातर हृदय चक्र या अज्ञा चक्र से शुरु करते हैं। इन चक्रों के साधने से नीचे के चक्र अपने आप जागृत हो जाते हैं और समय की भी बचत हो जाती है। गुरु के बताये अभ्यास के करने से ऊपर की चढ़ाइ करके जो गुरु कृपा और गुरु की मदद के बिना नहीं होती, सतपुरुष के धाम और इसके बाद संतों के धाम यानी दयाल देश तक पहुंच जाता है जहां से लौट कर फिर आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता। गुरुदेव जिज्ञासु की पात्रता देख कर हृदय चक्र या अज्ञा चक्र से शुरु कराते थे (स्त्रियों को हृदय चक्र पर साधना की सख्त मनाही है)।

यह हुआ अभ्यास जो नीचे से ऊपर को किया जाता है। दूसरा है सत्संग। यह क्रिया उपर से नीचे की तरफ होती है। इसमें गुरु या सत्संग कराने वाला अपने ख्याल को परमात्मा के चरणों में लगाता है और वहां से ईश्वर की की कृपा जिसे सूफी 'फैज' कहते हैं, सिख भाई 'अमृत' कहते हैं, इसाई लोग 'ग्रेस' (grace) कहते है अपना-कर सत्संगियों पर अपनी इच्छा शक्ति से फैलाता है। इस तरह ऊपर से कृपा की धार को लेकर नीचे फैलता है जिसमें अभ्यासी यह ख्याल करता है की प्रकाश या आत्मा की धार ऊपर से आ रही है और हमारी चोटी के स्थान (Medulla Oblongata) पर उतरती हुई सारे शरीर में प्रवाहित हो रही है। उस धार में वह चार चीजों का आभास करता है- ज्ञान, प्रेम, प्रकश और आनंद।

संत सब पर अपनी कृपा की धार डालते रहते हैं। यदि अभ्यासी का ध्यान इधर लगा हुआ है, वह सचेत है और इस धार को ग्रहण कर रहा है तो अवश्य लाभ होगा।

हमारा असली रूप क्या है? हम आत्मा हैं, हम ईश्वर हैं। हमारे असली रूप पर मन और माया के पर्दे पड़ गए हैं जिससे वह छिप गया है। अभ्यास यह है

कि उन पर्दो को झीना (thin) करते चलो बादल जितने गहरे होंगे सूरज का प्रकाश उतना ही दबा हुआ होगा। यदि वे झीने होते जायेंगे तो सूरज का प्रकाश उतना ही साफ नजर अएगा। अपनी इन्द्रियों का दमन करो, मन की इच्छाओं को इतना झीना करो जिसके बिना काम न चले। तब देखोगे कि प्रकाश ही प्रकाश है।

गुरुदेव (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) कहा करते थे कि अगर ईश्वर की याद कायम नहीं रहती है तो मौत को हमेशा सामने रखो कि न जाने किस वक्त आ जाये। यह एक ऐसा साधन है कि मौत के डर से ईश्वर का ख़्याल आता ही है। निरन्तर मौत का ख़्याल सामने रखने से भी ईश्वर के चिन्तन में बड़ी सहायता मिलती है।

प्रेम

संतो का तरीका युग–युग से प्रेम और भक्ति का है। महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज की आध्यात्मिक शिक्षा का तरीका प्रेम का तरीका था। प्रेम के माध्यम से ही इन्होंने पूज्य लाला जी महाराज से आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की और प्रेम के माध्यम से ही इन्होंने इसका प्रचार और प्रसार किया।

संत के मस्तिष्क में या हृदय में जो ईश्वर प्रेम है वह परस्पर प्रेम द्वारा ही शिष्य के मस्तिष्क में उतर जाता है। सूफी भाषा में यह 'इल्म सीना' है, 'इल्म सफीना' नहीं (आंतरिक विद्या है, मौखिक नहीं) मुख से नहीं कहा जाता, मन से मन में उतर जाता है।

इश्के मजाजी (वासना–युक्त प्रेम) और इश्के हकीकी (सच्चे मालिक या गुरु से प्रेम) में कोइ खास फर्क नहीं है सिर्फ ख्याल को मोड़ना है, नजरों को बदलना है ।

वे कहा करते थे 'गुरु' कहने में दूरी का भास होता है इसलिए कोई रिश्ता मान लेना चाहिए जैसे चाचा जी, बाबा जी, नाना जी, मांमा जी, भाई साहेब, इत्यादि ।

–''सवाने उमरी'' से साभार

गुरुदेव परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय

बहुधा अभ्यासियों को यह कहते सुना गया है कि अभ्यास में मन कम लगता है। क्योंकि मन में तरह-तरह के विचार उठा करते हैं जो रोके से नहीं रुकते। जब मन किसी बात की गुनावन उठाने लगता है तब उसी में घुसता चला जाता है और बहुत देर के बाद यह होश आता है कि हम तो बैठे हैं आन्तरिक अभ्यास करने लेकिन सोच रहे हैं दुनियाँ की बातें। यह तो बहुत सा समय नष्ट हो गया। सन्तों का कहना है कि ऐसा इसलिये होता है कि मन अभी जैसा चाहिये वैसा साफ नहीं हुआ है क्योंकि उसमें अनेकों सांसारिक भोगों की इच्छायें भरी पड़ी हैं। अभ्यास में बैठ कर जब अपनी सुरत को ऊपर की ओर चढ़ाते हैं तो वे इच्छायें बाधक होती हैं। मन उन्हीं का अभ्यस्त है। सुरत की धार बजाय शब्द या प्रकाश को पकड़ने के मन की तरंगों में उलझ जाती है और उसका बहाव नीचे की ओर हो जाता है। इस प्रवाह में अभ्यासी ऐसा बहता है कि उसे खबर भी नहीं होती कि मैं क्या कर रहा हूँ।

इस ग्रन्थि को सुलझाने का उपाय सन्तों ने यह बताया है कि सत्संग चेत कर करें और सतगुरु के वचनों को ध्यानपूर्वक सुनें, उन्हें भली-भाँति सोचें और समझें अर्थात् उन पर मनन करें। अपने मन में से भोग विलास की बेकार की इच्छाओं को घटाता और निकालता जाये तथा सन्त सतगुरु के अथवा परमपिता परमेश्वर के चरणों में प्रीति और प्रतीत दिन रात बढ़ाता जाये। जैसे-जैसे अभ्यास में चाव बढ़ता जायेगा, उसमें उन्नति की इच्छा तीव्र होती जाएगी। जैसे-जैसे दर्शनों के प्राप्ति की लालसा प्रबल होती जायेगी और संसार के भोगों की ओर से मन सिमटने लगेगा वैसे-वैसे मन और सुरत शुद्ध होने लगेंगे। जब अभ्यास के समय माया और काल अभ्यासी के मन और सुरत को भोगों का लालच देकर अपनी ओर खीचेंगे उस समय निर्मल मन और निर्मल सुरत सावधान होकर भोगों की तरंग और विचारों को हटा कर लगातार अपनी तवज्जह (attention) शब्द की ध्वनि में लगाकर ऊर्ध्वगामी होते जायेंगे ।

यद्यपि मन को शुद्ध करने के लिये यानि मन में से सांसारिक भोगों की इच्छाओं को हटाने अथवा कम करने के लिये कुछ समय तक चाव से निरन्तर अभ्यास करने की आवश्यकता है, फिर भी मनुष्य की कोई न कोई इन्द्रिय प्रबल बनी रहती है या काम, कोध, लोभ, मोह व अहंकार (जो काल के पाँच दूत कहलाते हैं) उनमें से कोई न कोई प्रबल रहता है जिसका वेग बहुत देर से घटता है। अत: इसके लिये सन्तों ने यह उपाय बताया है कि जब तक ऐसी हालत रहे (यानी जब तक भजन पूजन के समय काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार की तरंगें उठती रहें) तब तक अभ्यासी ध्यान पर अधिक जोर दे। यानी ध्यान अधिक देर तक करे और भजन थोड़ी देर करे। इसको इस तरह भी समझना चाहिये कि जितना ध्यान थोड़ी बहुत सफाई से बन पड़े उतना ही करे और अपने अभ्यास का शेष समय सुमिरन तथा ध्यान में लगावे ।

आन्तरिक अभ्यास में अभ्यासी अपने मन और सुरत को शब्द या प्रकाश की धार (जैसा जिसको सतगुरु ने बताया हो) जो ऊपर से नीचे को आती है उसके सहारे ऊपर को चढ़ता है। सांसारिक तरंगें उठती हैं तो शब्द या प्रकाश की धार उनके साथ मिलकर मन और सुरत को नीचे की ओर ढकेलने में सहायक होती हैं जिसके कारण अभ्यासी को अपनी सम्हाल रखना कठिन हो जाता है। किन्तु यदि ध्यान के अभ्यास में चाव और प्रेम है तो उसी के अनुसार मन और सुरत की धार हृदय के स्थान से उठ कर अपने प्रियतम परमेश्वर से मिलने तथा उसका दर्शन प्राप्त करने के लिये या उसके चरणों का स्पर्श करने के लिये ऊपर को चढ़ती है और उस स्थान पर पहुँचना चाहती है जहाँ पर ध्यान जमाया गया है। ऐसी स्थिति में दूसरी प्रकार की (यानी सांसारिक) चाहें पैदा होना नहीं बन पड़ता और न ही उसका झुकाव नीचे को होता है (जब तक स्वयं अभ्यासी ध्यान छोड़ कर दूसरा विचार न उठावे)। यदि वह ऐसा करेगा तो प्रियतम से मिलने का उसका ध्यान और चाव ठीक से कैसे बन पड़ेगा ।

सारांश यह है कि यदि कोई प्रबल इच्छा अभ्यासी के मन में भरी हुई है और वह सोई पड़ी है तो उसको शब्द या प्रकाश की धार जागृत अवस्था में ला देती है और ध्यान के समय परमेश्वर के प्रति चाव तथा प्रेम की धार जो अभ्यासी के हृदय से उठती है वह अन्य इच्छाओं की तरंगों को नहीं उठने देती। उन्हें दबाये और सुलाये रखती हैं। ईश्वर के प्रति जितना अधिक प्रेम होगा उतनी ही मात्रा में

अभ्यासी को सुगमता से ध्यान करने का अवसर मिलता है ।

दूसरे शब्दों में इसको यों समझ लेना चाहिये कि ध्यान में तबियत का लगना इस बात पर आधारित है कि अभ्यासी के मन में कितना चाव है और कितना उसे ईश्वर से प्रेम है। इसी प्रेम के सहारे वह विरोधी इच्छाओं का सामना कर सकता है क्योंकि भजन के समय विरोधी इच्छायें शीघ्र जागृत हो जाती हैं और अभ्यासी के मन और सुरत की धार को शीघ्र अधोमुखी बना देती हैं।

इससे यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिये कि चाहे शब्द का अभ्यासी हो चाहे प्रकाश का, अन्दर की सफाई की बड़ी आवश्यकता हैं। जब तक अभ्यासी का मन मैला है यानी उसमें सांसारिक भोगों की, चाहों की मलीनता भरी हुई है तब तक ऊपर को चढ़ाई कठिनता से होती है। किन्तु यदि उसके मन में ईश्वर का प्रेम पैदा हो गया है और उसे ईश्वर से मिलने की सच्ची लगन लगी है तो ध्यान करते समय जब-जब भोगों की चाहें उठेगी तब-तब वही ईश्वरीय प्रेम प्रगट होकर उन मलीन चाहों को रास्ते से हटा देगा।

ईश्वर का प्रेम और उसके दर्शनों का चाव सूरत की चढ़ाई में अत्यन्त सहायक होता है। जब-जब प्रेम की धार अभ्यासी के हृदय से उठ कर ऊपर की ओर चलती है तब-तब वह, अभ्यासी के मन और सुरत की धार को (जो प्रेम की धार के साथ चलती है) निर्मल और शुद्ध करती हुई ऊपर की ओर खींचती है। सतगुरु की कृपा उस प्रेम की धार को शक्ति प्रदान करती है और दर्शनों के चाव को बढ़ाती है। जितनी-जितनी ईश्वर प्रेम और चाव की धार ऊपर को चढ़ती जाती है, उसी अनुपात में ऊँचे घाट का रस और आनन्द मिलता जाता है, शान्ति और शीतलता का अनुभव होने लगता है जिसके फलस्वरूप मलीन इच्छायें बलहीन होने लगती हैं। इस प्रकार अभ्यास दिन रात बढ़ता जाता है अर्थात् एक धाम से दूसरे और दूसरे से तीसरे तथा अगले धामों तक उन्नति करते-करते सतलोक तक पहुँच जाता है। यह सब ध्यान करने से ही होता है जिसमें अपनी की धार को गौण अंग करके आन्तरिक चक्रों के शिखर तक पहुँचा सकता है ।

-(अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय से उधृत)

परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

पर दोष दर्शन मत करो, मत सुनो

पूज्य गुरु महाराज महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी कहा करते थे कि अपनी त्रुटियों को देखो, स्वनिरीक्षण करो, अपने भीतर में झांको और अपनी कमजोरियों को देखो। दूसरों की कमजोरियों की तरफ आपकी नजर नहीं जानी चाहिये। इसके साथ उनका यह भी आदेश था कि यदि आज कोई व्यक्ति आपके किसी मित्र या अन्य की बुराई करता है तो कल वो दूसरी जगह जाकर आपकी भी निन्दा कर सकता है। जो साधक है यदि वह किसी की निन्दा सुनने में आनन्द लेता है तो उसका चित्त दूषित हो जाता है जिससे उसकी साधना में विघ्न पड़ जाता है। भूल कर भी ऐसा नहीं करना चाहिये। यदि कोई ऐसा करता है तो हमें वहाँ से उठ जाना चाहिये या अपने मनोबल से अपना ध्यान उन आरोपों से अलग कर लेना चाहिये, आप उसमें आनन्द मत लीजिये।

हमें भूल कर भी किसी के दोष नहीं देखने चाहिये, यदि देखते भी हैं तो ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु ! इस पर कृपा करें ताकि यह अपने दोषों से मुक्त हो जावे। हम दूसरे की स्तुति नहीं सुन सकते परन्तु हमें निन्दा सुनने में बड़ा आनन्द आता है। साधक को सावधान रहना चाहिये। उसे न किसी की निन्दा करनी चाहिये, न किसी की निन्दा सुननी चाहिये। किसी की निन्दा सुनने से अपने भीतर में एक नया संस्कार बन जाता है, हमारा चित्त दूषित हो जाता है, अशान्त हो जाता है। साधना का यह अर्थ नहीं कि हम सुबह 5–10 मिनट बैठ गए, नहीं तो नहीं बैठे। यदि हमारा सारे दिन का व्यवहार उस साधना के अनुसार नहीं है तो समझ लीजिये की हमारी वो साधना भी एक वृत्ति है, आपने अपना उद्धार करने का कोई विशेष कदम नहीं उठाया है।

हमारी साधना और हमारी दिनचर्या में समानता होनी चाहिए। साधना और सारा दिन हम जो दिनचर्या करते हैं हमें उसमें आनन्द आना चाहिये। हमारी इच्छा

के प्रतिकूल किसी ने कोई बात कह दी तो बस हमारी कई महीनों की साधना खत्म हो गयी एक क्षण में। इस भीतर के आनन्द की रक्षा करनी पड़ती है। इंद्रियों के जो विषय हैं, हमें उन पर संयम लाना चाहिये। मन को बुद्धि के आधीन करना चाहिए। बुद्धि को आत्मा से प्रेरणा लेनी चाहिये। हमारे जितने भी कर्म, विचार, शब्द हों, वे सब आत्ममय हों। इतना करते हुए भी ये हमारी आत्मिक कमाई खत्म कर देते हैं। हमारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती, क्रोध आता है, सब कुछ खत्म हो जाता है। तो साधक को बड़ा सतर्क रहना चाहिये, अनुशासन में रहना चाहिये, संयम में रहना चाहिये। गुरु इसीलिए किया जाता है कि वह आपकी देखभाल करता रहे। किन्तु वह आपकी देखभाल तभी करेगा जब आप उसके आदेशों का पालन करेंगे।

"ढूंढता फिरता हूँ ऐ इकबाल अपने आपको,
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंज़िल हूँ मैं"

खोज किसकी है ? किसी और की नहीं। अपनी ही।
पाना किसे है ? वह बाहर नहीं है, भीतर है। जिसे तलाश रहे हैं वह हमारा स्वभाव है। इसलिए यात्रा पदयात्रा नहीं, यात्रा आत्मयात्रा है। यात्रा किसी और तक पहुँचने की नहीं है, यात्रा अपने तक ही पहुँचने की है। जो मिला हुआ है, उसके प्रति जागना है। संपदा खोजनी नहीं है, सिर्फ आंख खोलनी है। –ओशो

जिसे आप समझना चाहते हैं, उसके साथ आपको बैठना तो पड़ेगा ना, तभी तो आप उसे समझ पाएंगें। तो खुद के साथ मौन में बैठना शुरू करें। –ओशो

जो लोग आपको सिर्फ काम के वक्त याद करते हैं उनके काम जरूर आओ, क्योंकि वो अंधेरों में रोशनी ढूंढते हैं और वो रोशनी आप हो।

परम पूज्य डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना जी की प्रथम पुण्य तिथि पर विशेष

सौम्य व्यक्तित्व के धनी परम पूज्य शक्ति बाबू का यूं असमय जाना

17 अप्रैल 2020 वह निश्चित रूप से एक सामान्य दिन नहीं था। पूरे देश में कोविड–19 महामारी के कारण लॉकडाउन लगा हुआ था। लेकिन हमने अपनी जीवनचर्या को नई परिस्थितियों के अनुरूप शनैः शनैः ढाल लिया था। लॉकडाउन से पहले, पास के पार्क में प्रतिदिन प्रातः योग शिविर लगता था। मैं वहां जाया करता था। लेकिन वह सब बंद हो गया था और ऑनलाइन कक्षाएं आयोजित की जा रही थीं। सो मैं सुबह 5 बजे उठ गया था और 5.30 बजे से जूम ऐप के माध्यम से योग कर रहा था। एक घंटे का सत्र समाप्त होने के बाद मैंने अपना व्हाट्सएप संदेश देखा। अनुराग भाई साहब का एक संदेश था कि पूज्य शक्ति बाबू अब नहीं रहे। यह निश्चित रूप से अविश्वसनीय था और मुझे लगा कि यह जरूर कुछ टाइपिंग मिस्टेक होगी। शायद वह पूज्य शक्ति बाबू के किसी रिश्तेदार के बारे में लिखना चाहते होंगे। मैंने समाचार को नजरअंदाज करने की कोशिश की। मैंने कुछ मिनट इंतजार किया कि अनुराग जी निश्चित रूप से स्पष्टीकरण भेजेंगे। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद बेचैन मन से मैंने उनको फोन किया। भरी हुई आवाज में उन्होंने कहा: ''आपने संदेश में जो पढ़ा है, वह सही है।''

अब ज्यादा कुछ नहीं कहना था। अनहोनी हो गई थी। इसके बाद इधर–उधर कई फोन किये। समझने का प्रयास किया कि ये सब कैसे हुआ। पर 8.30 बजे मालूम हुआ कि उनके पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार कर दिया गया है। यह सब एक सपने जैसा था, एक बुरा सपना। लेकिन ऐसा हुआ था। मन को यकीन नहीं हो रहा था। सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि लॉकडाउन होने के कारण ज्यादातर लोग उनके आवास पर जाने की स्थिति में नहीं थे। कुछ ही लोग उनके अंतिम दर्शन कर सके। अगले एक सप्ताह तक, कोई भी इस समाचार पर विश्वास करने की स्थिति में नहीं था। लेकिन धीरे–धीरे, हमारे पास इसे मानने के अलावा कोई और विकल्प नहीं था।

धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। बीच में बहुत सारी अप्रत्याशित घटनाएं भी हुईं। अब परिस्थितियां पूरी तरह से बदल गई हैं। उनकी कृपा से, कोविड-19 से जनित प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद सत्संग की गतिविधियाँ सामान्य हो चुकी हैं। नवम्बर 2020 में 'आपका भवन', ग़ाज़ियाबाद में, नवनियुक्त अध्यक्ष, परम श्रद्धेय श्री उमाकांत प्रसाद जी के नेतृत्व में, भंडारा आयोजित होने के साथ ही गतिविधियाँ प्रारंभ हुईं। अब देश के विभिन्न हिस्सों से नियमित सत्संग आयोजित होने की खबरें आ रही हैं। बसंत पंचमी के अवसर पर वाराणसी में भंडारा आयोजित हुआ। लेकिन पूज्य शक्ति बाबू का शून्य नहीं भरा जा सकता। देश भर में रामाश्रम सत्संग (ग़ाज़ियाबाद) के संदेश को फैलाने में उनके योगदान को हमेशा याद किया जाएगा। अपनी व्यक्तिगत व्यस्तताओं के बावजूद, उन्होंने न केवल आध्यात्मिक विकास में सत्संगियों की मदद की बल्कि उनकी सांसारिक समस्याओं को भी हल करने का यथासंभव प्रयास किया।

मुझे स्मरण है 1980-81 के आसपास जब पहली बार उनसे मिलना हुआ था। उस समय मैं काफी छोटा था। जमशेदपुर भंडारे में वह किसी से कह रहे थे है कि ये हमारे सिलसिले के बुजुर्गों का ही आशीर्वाद है जो भंडारे जैसे वृहत कार्यक्रमों का आयोजन सफलतापूर्वक हो जाता है। वह स्वभाव से बहुत ही विनम्र थे। ऐसा लगता था कि उन्होंने पूज्य गुरुदेव डॉ. करतार सिंह जी के उस वचन को पूर्णरूपेण आत्मसात कर लिया था जिसमे उन्होंने कहा था ''अहंकार से प्रभु नहीं मिलते, चाहे कोई भी साधन करिए, दीनता को तो अपनाना ही होगा।'' भंडारों के दौरान, अक्सर उन्हें रसोई में व्यवस्थाओं को देखते हुए पाया जाता था ताकि सत्संगियों को समय पर स्वादिष्ट एवं और पर्याप्त मात्रा में भोजन सुलभ हो सके।

एक उच्च स्तर के अनुशासित व्यक्ति एवं सौम्य व्यक्तित्व के धनी पूज्य शक्ति बाबू करुणा से भरे हुए थे और सत्संगियों की सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। यदि किसी को चिकित्सकीय सलाह की आवश्यकता होती थी तो वह उन्हें शास्त्रीनगर (ग़ाज़ियाबाद) में सत्संग में ही आने को कहते थे, जहाँ सत्संग के बाद उनसे चर्चा करते थे। दैनिक सत्संग के बाद सत्संग स्थल के पास दुकानदार द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले कागज के लिफाफे पर दवाइयों का नाम लिखते हुए उनकी छवि आज भी हम सबके दिमाग में ताजा है। वह सत्संगियों की समस्याओं को बड़े धैर्य से सुनते थे और अपना बहुमूल्य परामर्श देते थे। वैसे कई सत्संगी उनके नवयुग मार्केट स्थित क्लिनिक में भी चिकित्सकीय परामर्श के लिए आते थे।

जब से 2012 में पूज्य गुरुदेव डॉ. करतार सिंह जी परम धाम को सिधारे, पूज्य शक्ति बाबू ने देश भर में सत्संग का संदेश फैलाने के लिए विभिन्न केंद्रों का भ्रमण करना शुरू कर दिया। धीरे–धीरे ये आवृत्ति बढ़ी और लगभग हर महीने ग़ाज़ियाबाद के बाहर अन्य शहर में एक सत्संग होने लगा।

कई अवसरों पर, वह सत्संगियों से प्रेम के रास्ते पर चलने की अपील करते थे। वह कहते थे परिवार के सदस्यों के बीच आपस में प्रेम का सम्बन्ध होना चाहिए। उनके अनुसार, अगर परिवार में ही प्यार नहीं है, तो शांति नहीं होगी, जो आध्यात्मिक विकास की पहली सीढ़ी है।

उन्होंने हमेशा आध्यात्मिक साधना और सांसारिक मामलों के बीच संतुलन बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। वह सत्संगियों को सांसारिक मामलों में भी व्यावहारिक बनाना कहते थे । एक बार यह पूछे जाने पर कि कोई व्यक्ति शाम की संध्या पर कैसे बैठ सकता है यदि वह कार्यालय से घर देर से पहुँचता है, तो उन्होंने कहा: ''आप जहाँ भी हैं, वहीं से पूज्य गुरुदेव को याद करें, यही पूजा है।'' उन्होंने यहां तक कहा कि संध्या का समय दुनियावी दिनचर्या के आधार पर तय किया जा सकता है। लेकिन, उन्होंने कहा कि इसमें स्थिरता होनी चाहिए। जो भी समय संध्या के लिए निश्चित किया है, उस पर अडिग रहना चाहिए। वह कहते थे कि सत्संगियों को नियमित रूप से अपने–अपने सेंटरों पर साप्ताहिक सत्संग में निश्चित रूप से शामिल होना चाहिए। उनका मानना था कि जब तक हम सत्संग में नियमित नहीं होंगे तब तक हमारी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती है।

रामाश्रम सत्संग के आचार्य एवं अध्यक्ष के रूप में अत्यंत ही अल्प समय में उन्होंने सत्संगियों के दिल में अपने लिए एक अलग जगह बना ली। वह सत्संगियों के अति प्रिय थे। एक सत्संगी के शब्दों में: 'वह हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गए थे। किसी भी समस्या के लिए हम उनसे बात करते थे और वह समाधान प्रस्तुत कर देते थे।' उनका इस तरह असमय जाना सत्संग एवं समाज के लिए अपूर्णीय क्षति है।

उनके प्रथम निर्वाण दिवस पर हम उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और हमारी सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम प्रतिज्ञा करें कि हम अपने गुरु तथा रामाश्रम सत्संग के अन्य बुजुर्गों द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलने का पूर्ण प्रयास करेंगे।

ॐ शांति। *–नवतन कुमार (ग़ाज़ियाबाद)*

लघु कथा

गृहस्थ आश्रम की महिमा

पुत्र प्राप्ति कामना से भगवान् व्यास ने भगवान् शंकर की उपासना की, जिसके फलस्वरूप उन्हें शुकदेवजी पुत्र रूप में प्राप्त हुए। व्यासजी ने शुकदेव जी के जातकर्म, यज्ञोपवीत आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। गुरुकुल में रहकर शुकदेवजी ने शीघ्र ही सम्पूर्ण वेदों एवं अखिल धर्मशास्त्रों में अद्‌भुत पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। गुरुगृह से लौटने के बाद व्यासजी ने पुत्र का प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। उन्होंने शुकदेवजी से कहा–'पुत्र! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। तुमने वेद और धर्मशास्त्र पढ़ लिये। अब अपना विवाह कर लो और गृहस्थ बनकर देवताओं तथा पितरों का यजन करो।

शुकदेवजी ने कहा–'पिताजी। गृहस्थाश्रम सदा कष्ट देनेवाला है। महाभाग। मैं आपका औरस पुत्र हूँ। आप मुझे इस अन्धकारपूर्ण संसार में क्यों ढकेल रहे हैं? स्त्री, पुत्र, पौत्रादि सभी परिजन दुःख पूर्ति के ही साधन है। इनमें सुख की कल्पना करना भ्रम मात्र है। जिसके प्रभाव से अविद्याजन्य कर्मो का अभाव हो जाये, आप मुझे उसी ज्ञान का उपदेश करें।

व्यासजी ने कहा–'पुत्र! तुम बड़े भाग्यशाली हो। मैंने देवी भागवत की रचना की है। तुम इसका अध्ययन करो। सर्वप्रथम आधे श्लोक में इस पुराण का ज्ञान भगवती पराशक्ति ने भगवान् विष्णु को देते हुए कहा है–'यह सारा जगत् मैं ही हूँ, मेरे सिवा दूसरी कोई अविनाशी वस्तु है ही नहीं।' भगवान् विष्णु से यह ज्ञान ब्रह्माजी को मिला और ब्रह्माजी ने इसे नारदजी को बताया तथा नारदजी से यह मुझे प्राप्त हुआ। फिर मैंने इसकी बारह स्कन्धों में व्याख्या की। महाभाग! तुम इस वेदतुल्य देवी भागवत का अध्ययन करो। इससे तुम संसार में रहते हुए माया से अप्रभावित रहोगे।'

व्यासजी के उपदेश के बाद भी जब शुकदेवजी को शान्ति नहीं मिली, तब उन्होंने कहा– 'बेटा! तुम जनकजी के पास मिथिलापुरी में जाओ। वे जीवन मुक्त

ब्रह्मज्ञानी हैं। वहाँ तुम्हारा अज्ञान दूर हो जायगा। तद्नन्तर तुम यहाँ लौट आना और सुखपूर्वक मेरे आश्रम में निवास करना। व्यासजी के आदेश से शुकदेवजी मिथिला पहुँचे। वहाँ द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया, तथा काठ की भाँति मुनि वहीं खड़े हो गये। उनके ऊपर मान–अपमान का कोई असर नहीं पड़ा। कुछ समय बाद राजमन्त्री उन्हें विलास भवन में ले गये। वहाँ शुकदेवजी का विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया गया, किन्तु शुकदेवजी का मन वहाँ भी विकार शून्य बना रहा। अन्त में उन्हें महाराज जनक के समक्ष प्रस्तुत किया गया। महाराज जनक ने उनका आतिथ्य सत्कार करने के बाद पूछा– 'महाभाग! आप बड़े निःस्पृह महात्मा हैं। किस कार्य से आप यहाँ पधारे हैं, बताने की कृपा करें।'

शुकदेवजी बोले– 'राजन्! मेरे पिता व्यासजी ने मुझे विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा दी है। मैंने उसे बन्धनकारक समझकर अस्वीकार कर दिया। मैं संसार–बन्धन से मुक्त होना चाहता हूँ। आप मेरा मार्गदर्शन करने की कृपा करें'।

महाराज जनक ने कहा–'परंतप! मनुष्यों को बंधन में डालने और मुक्त करने में केवल मन ही कारण है। विषयी मन बन्धन और निर्विषयी मन मुक्ति का प्रदाता है। अविद्या के कारण ही जीव और ब्रह्म में भेदबुद्धि की प्रतीति होती है। महाभाग, अविद्या विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञान से शान्त होती है। यह देह मेरी है, यही बन्धन है और यह देह मेरी नहीं है, यही मुक्ति है। बन्धन शरीर और घर में नहीं है, अहंता और ममता में है।'

जनकजीके उपदेश से शुकदेवजी की सारी शंकाएँ नष्ट हो गयीं वे पिता के आश्रम में लौट आये। फिर उन्होंने पितरों की सुन्दरी कन्या पीवरी से विवाह करके गृहस्थाश्रम के नियमों का पालन किया, तद्नन्तर संन्यास लेकर मुक्ति प्राप्त किया।

–(साभार: गीता प्रेस, गोरखपुर)

सूफ़ी कहानी

ध्यान

एक फ़कीर एक वृक्ष के नीचे ध्यान करते थे। वो रोज एक लकड़हारे को लकड़ी काट कर ले जाते देखते थे। एक दिन उन्होंने लकड़हारे से कहा कि सुन भाई, दिन-भर लकड़ी काटता है, दो जून रोटी भी नहीं जुट पाती। तू जरा आगे क्यों नहीं जाता, वहां आगे चंदन का जंगल है। एक दिन काट लेगा, सात दिन के खाने के लिए काफ़ी हो जाएगा।

गरीब लकड़हारे को विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि वह तो सोचता था कि जंगल को जितना वह जानता है और कौन जानता है! जंगल में लकड़ियां काटते-काटते ही तो जिंदगी बीती। यह फ़कीर यहां बैठा रहता है वृक्ष के नीचे, इसको क्या खाक पता होगा? मानने का मन तो न हुआ, लेकिन फिर सोचा कि हर्ज क्या है, कौन जाने ठीक ही कहता हो ! फिर झूठ कहेगा भी क्यों? शांत आदमी मालूम पड़ता है, मस्त आदमी मालूम पड़ता है। कभी बोला भी नहीं इसके पहले। एक बार प्रयोग करके देख लेना जरूरी है।

फ़कीर की बातों पर विश्वास कर वह आगे गया। लौटा तो फ़कीर के चरणों में सिर रखा और कहा कि मुझे क्षमा करना, मेरे मन में बड़ा संदेह आया था, क्योंकि मैं तो सोचता था कि मुझसे ज्यादा लकड़ियां कौन जानता है। मगर मुझे चंदन की पहचान ही न थी। मेरा बाप भी लकड़हारा था, उसका बाप भी लकड़हारा था। हम यही जलाऊ-लकड़ियां काटते-काटते जिंदगी बिताते रहे, हमें चंदन का पता भी क्या, चंदन की पहचान क्या! हमें तो चंदन मिल भी जाता तो भी हम काटकर बेच आते उसे बाजार में ऐसे ही। तुमने पहचान बताई, तुमने गंध जतलाई, तुमने परख दी। मैं भी कैसा अभागा! काश, पहले पता चल जाता! फ़कीर ने कहा कोई फ़िक्र न करो, जब पता चला तभी जल्दी है। जब जागा तभी सबेरा है। दिन बड़े मजे में कटने लगे। एक दिन काट लेता, सात-आठ दिन, दस दिन जंगल आने की जरूरत ही न रहती। एक दिन फ़कीर ने कहा ''मेरे भाई, मैं सोचता था कि तुम्हें कुछ अक्ल आएगी। जिंदगी भर तुम लकड़ियां काटते रहे, आगे न गए, तुम्हें कभी यह सवाल नहीं उठा

कि इस चंदन के आगे भी कुछ हो सकता है?'' उसने कहा, ''यह तो मुझे सवाल ही न आया। क्या चंदन के आगे भी कुछ है?''

उस फकीर ने कहा, ''चंदन के जरा आगे जाओ तो वहां चांदी की खदान है। लकड़ियाँ–वकड़ियाँ काटना छोड़ो। एक दिन ले आओगे, दो–चार–छः महीने के लिए हो गया।'' अब तो वह फ़कीर पर भरोसा करने लगा था। बिना संदेह किये भागा। चांदी पर हाथ लग गए, तो कहना ही क्या! चांदी ही चांदी थी! चार–छः महीने नदारद हो जाता। एक दिन आ जाता, फिर नदारद हो जाता।

लेकिन आदमी का मन ऐसा मूढ़ है कि फिर भी उसे ख्याल न आया कि और आगे कुछ हो सकता है। फ़कीर ने एक दिन कहा कि तुम कभी जागोगे कि नहीं, कि मुझे ही तुम्हें जगाना पड़ेगा। आगे सोने की खदान है मूर्ख! तुझे खुद अपनी तरफ से सवाल, जिज्ञासा, मुमुक्षा कुछ नहीं उठती कि जरा और आगे देख लूं? अब छह महीने मस्त पड़ा रहता है, घर में कुछ काम भी नहीं है, फुरसत है। जरा जंगल में आगे देखकर देखूं यह खयाल में नहीं आता?

उसने कहा कि मैं भी मंदभागी, मुझे यह ख्याल ही न आया, मैं तो समझा चांदी, बस आखिरी बात हो गई, अब और क्या होगा? गरीब ने सोना तो कभी देखा न था, सुना था। फ़कीर ने कहा, थोड़ा और आगे सोने की खदान है। और ऐसे कहानी चलती है। फिर और आगे हीरों की खदान है। और ऐसे कहानी चलती है। और एक दिन फ़कीर ने कहा कि नासमझ, अब तू हीरों पर ही रुक गया? अब तो उस लकड़हारे को भी बड़ी अकड़ आ गई, बड़ा धनी भी हो गया था, महल खड़े कर लिए थे। उसने कहा अब छोड़ो, अब तुम मुझे परेशान न करो। अब हीरों के आगे क्या हो सकता है?

उस फ़कीर ने कहा, हीरों के आगे मैं हूं। तुझे यह कभी ख्याल नहीं आया कि यह आदमी मस्त यहां बैठा है, जिसे पता है हीरों की खदान का, वह हीरे नहीं भर रहा है, इसको जरूर कुछ और आगे मिल गया होगा! हीरों से भी आगे इसके पास कुछ होगा, तुझे कभी यह सवाल नहीं उठा?

वह आदमी रोने लगा। फ़कीर के चरणों में सिर पटक दिया। कहा कि मैं कैसा मूढ़ हूं, मुझे यह सवाल ही नहीं आता। तुम जब बताते हो, तब मुझे याद आता है। यह

ख्याल तो मेरे जन्मों-जन्मों में नहीं आ सकता था कि तुम्हारे पास हीरों से भी बड़ा कोई धन है। फ़कीर ने कहा, उसी धन का नाम ध्यान है। अब खूब तेरे पास धन है, अब धन की कोई जरूरत नहीं। अब जरा अपने भीतर की खदान खोद, जो सबसे आगे है।

यही मैं तुमसे कहता हूं, और आगे, और आगे। चलते ही जाना है। उस समय तक मत रुकना जब तक कि सारे अनुभव शांत न हो जाएं। परमात्मा का अनुभव भी जब तक होता रहे, समझना दुई मौजूद है, द्वैत मौजूद है, देखनेवाला और दृश्य मौजूद है। जब वह अनुभव भी चला जाता है तब निर्विकल्प समाधि। तब न दृश्य ही बचा, न द्रष्टा बचा, कोई भी नहीं बचा। एक सन्नाटा है, एक शून्य है। और उस शून्य में जलता है बोध का दीया। बस बोधमात्र, चिन्मात्र ! वही परम है। वही परम-दशा है, वही समाधि है।

-(पंकज गोयल)

जब परमात्मा अपनी रज़ा से कुछ देता है तो वो हमारी सोच से परे होता है। हमें हमेशा उसकी रज़ा में रहना चाहिए। क्या पता वो हमें पूरा समुन्दर देना चाहता हो और हम चम्च लेकर खड़े हों।

ऐ मेरे मालिक
चरण में रखना, शरण में रखना
हरदम तेरी ही लगन में रखना
सुख के उजाले हों, दुख के अंधेरे
जो भी हो हरदम मगन में रखना
सांसों की माला, सिमरन के मोती
मन नहीं भटके, जपन में रखना
पलकें जो मूंदूं, तेरे हो दर्शन
हरदम इसी तड़पन में रखना

The Ego and the Dualities

If all is in truth Sachchidananda, death, suffering, evil, limitation can only be the creations, positive in practical effect, negative in essence, of a distorting consciousness which has fallen from the total and unifying knowledge of itself into some error of division and partial experience. This is the fall of man typified in the poetic parable of the Hebrew Genesis. That fall is his deviation from the full and pure acceptance of God and himself, or rather of God in himself, into a dividing consciousness which brings with it all the train of the dualities, life and death, good and evil, joy and pain, completeness and want, the fruit of a divided being. This is the fruit which Adam and Eve, *Purusha* and *Prakriti*, the soul tempted by Nature, have eaten. The redemption comes by the recovery of the universal in the individual and of the spiritual term in the physical consciousness. Then alone the soul in Nature can be allowed to partake of the fruit of the tree of life and be as the Divine and live for ever. For then only can the purpose of its descent into material consciousness be accomplished, when the knowledge of good and evil, joy and suffering, life and death has been accomplished through the recovery by the human soul of a higher knowledge which reconciles and identifies these opposites in the universal and transforms their divisions into the image of the divine Unity.

To Sachchidananda extended in all things in widest commonalty and impartial universality, death, suffering, evil and limitation can only be at the most reverse terms, shadow-forms of their luminous opposites. As these things are felt by us, they are notes of a discord. They formulate separation where there should be a unity, miscomprehension where there should be an understanding, an attempt to arrive at independent harmonies where there should be a self-adaptation to the orchestral whole. All totality, even if it be only in one scheme of the universal vibrations, even if it be only a totality of the physical consciousness without possession of all that is in movement beyond and behind, must be to that extent a reversion to harmony and a reconciliation of jarring opposites. On the other hand, to Sachchidananda transcendent of the forms of the universe the dual terms themselves, even so understood, can no longer be justly applicable. Transcendence transfigures; it does not reconcile, but rather transmutes opposites into something surpassing them that effaces their oppositions.

At first, however, we must strive to relate the individual again to the harmony of the totality. There it is necessary for us — otherwise there is no issue from the problem — to realise that the terms in which our present consciousness renders the values of the universe, though practically justified for the purposes of human experience and progress, are not the sole terms in which it is possible to render them and may not be the complete, the right, the ultimate formulas. Just as there may be sense-organs or formations of sense-capacity which see the physical world differently and it may well be better, because more completely, than our sense-organs and sense-capacity, so there may be other mental and supramental envisaging of the universe which surpass our own. States of consciousness there are in which Death is only a change in immortal Life, pain a violent backwash of the waters of universal delight, limitation a turning of the Infinite upon itself, evil a circling of the good around its own perfection; and this not in abstract conception only, but in actual vision and in constant and substantial experience. To arrive at such states of consciousness may, for the individual, be one of the Life Divine most important and indispensable steps of his progress towards self-perfection.

Certainly, the practical values given us by our senses and by the dualistic sense-mind must hold good in their field and be accepted as the standard for ordinary life-experience until a larger harmony is ready into which they can enter and transform themselves without losing hold of the realities which they represent. To enlarge the sense-faculties without the knowledge that would give the old sense-values their right interpretation from the new standpoint might lead to serious disorders and incapacities, might unfit for practical life and for the orderly and disciplined use of the reason. Equally, an enlargement of our mental consciousness out of the experience of the egoistic dualities into an unregulated unity with some form of total consciousness might easily bring about a confusion and incapacity for the active life of humanity in the established order of the world's relativities. This, no doubt, is the root of the injunction imposed in the *Gita* on the man who has the knowledge not to disturb the life-basis and thought-basis of the ignorant; for, impelled by his example but unable to comprehend the principle of his action, they would lose their own system of values without arriving at a higher foundation.

Such a disorder and incapacity may be accepted personally and are

accepted by many great souls as a temporary passage or as the price to be paid for the entry into a wider existence. But the right goal of human progress must be always an effective and synthetic reinterpretation by which the law of that wider existence may be represented in a new order of truths and in a more just and puissant working of the faculties on the life material of the universe. For the senses the sun goes round the earth; that was for them the centre of existence and the motions of life are arranged on the basis of a misconception. The truth is the very opposite, but its discovery would have been of little use if there were not a science that makes the new conception the centre of a reasoned and ordered knowledge putting their right values on the perceptions of the senses. So also for the mental consciousness God moves round the personal ego and all His works and ways are brought to the judgment of our egoistic sensations, emotions and conceptions and are there given values and interpretations which, though a perversion and inversion of the truth of things, are yet useful and practically sufficient in a certain development of human life and progress. They are a rough practical systematisation of our experience of things valid so long as we dwell in a certain order of ideas and activities. But they do not represent the last and highest state of human life and knowledge. "Truth is the path and not the falsehood." The truth is not that God moves round the ego as the centre of existence and can be judged by the ego and its view of the dualities, but that the Divine is itself the centre and that the experience of the individual only finds its own true truth when it is known in the terms of the universal and the transcendent. Nevertheless, to substitute this conception for the egoistic without an adequate base of knowledge may lead to the substitution of new but still false and arbitrary ideas for the old and bring about a violent instead of a settled disorder of right values. Such a disorder often marks the inception of new philosophies and religions and initiates useful revolutions. But the true goal is only reached when we can group round the right central conception a reasoned and effective knowledge in which the egoistic life shall rediscover all its values transformed and corrected. Then we shall possess that new order of truths which will make it possible for us to substitute a more divine life for the existence which we now lead and to effectualise a more divine and puissant use of our faculties on the life-material of the universe.

(Excerpts from "The Life Divine", Sri Aurobindo Ashram Publication Department)

Wonders of Ultimate Reality and Misconceptions about Yoga

The teachings of *sant-mat* is a fine blending of 1) ancient Indian yogic system and 2) *Bhakti* and *Sufi* doctrines. The same is based on eternal truth & reality. Without understanding these two basic principles we can't understand the spiritual teachings and progress in this path. The yogic system and the *sufi*/*bhakti* system are not two antagonistic system but the same are complimentary and supplementary to each other. Sufi system emphasizes showering of Divine love/grace from upward to downward (from universal divine i.e *parmatma* to individual or from Guru to disciple) and the yogic system emphasizes on ascent of individual form downward to upward. Both the process is not only supplementary or complementary but cyclic and essentially one. There is an eternal yearning of an individual deep inside to return to its source i.e. individual self to merge into the cosmic consciousness.

Grace of the Universal Divine or guru is flowing each and every moment and we have absolutely no inkling about that as our equipment/ apparatus is full of other things and is not able to absorb that divine grace. Unless we empty your bowl/cup we can't receive even the *amrit* flowing constantly each and every second. You have to just empty your cup i.e. ending or at least restricting/lessening your desires.

Human Body is a Miniature Cosmos

Human biological structure is the key for understanding the mystery of cosmos. Human body is a condensed/ miniature cosmos with inbuilt ability of transcendence. Life/ reality is a multidimensional phenomenon. We can live and operate in spaceless and timeless dimension. After understanding the inner-self we do not just live in the universe, the universe lives in us. Times of past, present and future occur simultaneously.

Spirituality is holistic approach to life and is concerned with ending of psychological suffering and for ending the psychological sufferings you will have to understand the instrument or apparatus or the vehicle which suffers and which is capable of transcendence from all human sufferings and merging the individual sensuousness into

cosmic consciousness. We are driving a car and if we do not know the functioning/machinery of the car, accident is bound to occur. Even vast knowledge of road will not make your driving successful. We talk so much about spiritual knowledge but the we do not have proper knowledge of vast engineering inside our body. Hence it is important to highlight some basic human mind body system.

Human Mind Body System

Human body mind system is a biological wonder and it is a neuro-chemical factory. The human body has a marvellous complex array of systems, including the circulatory, digestive, and muscular systems, and each has important functions. But in order to operate properly, all of the systems in the body must communicate and co-ordinate with each other. The body has mainly two system for control and communication-1) Nervous System consisting of brain, spinal cord, and nerves. The nervous system sends and receives information through nerve cells (neurons) as electrical impulses. A nerve impulse can travel as fast as 100 meters/second, and it targets a specific part of the body, such as a muscle.

The other control system is the endocrine system. It consists of a group of organs called endocrine glands, which are located in various parts of the body. Endocrine glands release chemical messengers called hormones that travel through the blood. Because hormones take time to travel through the circulatory system, a response by the endocrine system takes much longer than one by the nervous system. However, hormones can travel everywhere in the body. For this reason, hormones control those responses that are generalized and longer lasting. The nervous system is for immediate and specific responses, and the endocrine system is for slower, long-term, general types of responses. Neither system can function without the other.

It is further important to note that the brain, nerve systems and the centres that bring out human actions and emotions is basically on autopilot in more than 97% of human beings. How to reach the ultimate intuition or perception stage are the practices of real *Yoga* or *Sant-mat*.

Subtle Body or *Sukshama Sarir*

In addition to our physical body there are more bodies inside us which our *shastra* identifies as *sukshama sasir* & *karan sasir* etc. There are

five such bodies: physical, Vital, Mental, Supramental, Intellect & Bliss and seven planes of existence (*sapt akash*) detailed discussion of which is not possible here and presently we are dealing only with the *Sukshama Sarir*.

Science has accepted the presence of the subtle body or the *sukshama sarir* (also called astral body or vital body). It is also now established that every physical organ and tissue of the human physical has a counterpart (body double) in the *sukshama sarir* and pictures have been taken of this *sukshama sarir*. Even the biologists accept that the vital body provides the blueprints for the form and programs of the physical body.

What the modern medical science identifies as nerves in the physical body and the counterpart in the *sukshama sarir* is *nadi* which is used by ayurvedic, vedic and yogic systems. *Nadi* literally means a channel for the flow of vital energy or *prana*.

General person does not know the difference between breath and *prana*. Breath is taken in the physical body whereas *prana* intake happens in the *sukshama sarir*. Basically, what is breath is to physical body, *prana* is to the *sukshama sarir* and it flows through *nadis* in the *sukshama sarir*.

Without understanding this inner body and accepting the presence of *sukshama sarir* (which is the blueprint of the physical body), we can't truly understand the human phenomena and reach the source or higher levels of consciousness. All humanity is suffering because of the basic misunderstanding of accepting the physical body as main body and trying to cut the leaves & branches without striking at the root. Cure of a disease (absence of ease) can be effected only by reaching to the source, the real remedy of our suffering can be found if we get to the root of the problem. The basic problem is that our brain even doubts the existence of the other subtler body i.e. *Sukshama sarir*.

Importance of Endocrine Glands and Associated *Chakras*

It is important to know the endocrine glands and its role in the spiritual journey. Each endocrine gland is a counterpart of something higher in the *sukshama sarir* what we call *chakras*. Each endocrine gland is sensitive to or associated with an energy centre or nerve plexus (*chakra*) in the *Sukshama Sarir*. There are 21 energy centres (*chakras*) out of which there

are Seven major *chakras* - 1) *Muladhar* (root) 2) *swadhisthan* (sacral) 3) *Manipura* (solar plexus) 4) *Anahata* (Heart) 5) *Visuddhi* (Throat) 6) *Ajna* (Third eye) and 7) *Sahasrar* (crown) corresponding to the seven respective endocrine glands in human body 1) Reproductive, 2) Adrenal, 3) Pancreas, 4) Thymus, 5) Thyroid, 6) Pituitary, and 7) Pineal.

It is these centres which give higher substances required so that the related endocrine gland can secrete in us chemicals which lead to a higher quality of awareness, emotions and understanding. But in the areas of the *chakras* we have created *granthis* i.e blockages/hindrances/ imbalance. These *granthis* do not allow the *chakras* to function properly and throws them out of balance/rhythm and lead to repetitive negative emotions which induce the glands to secrete poisonous chemicals and this further leads to disturbance/ tension in the physical body and manifest in ailments and diseases. Different negative emotion brings different type of specific diseases.

Misconceptions about *Yoga*

Indian yogic system which emphasizes on *Brahmavidya* is based mainly on *Sankhaya yoga* (which also finds mention in eternal divine song *Bhagvatgita*) and the most authentic exposition on *yoga* contained is *Yoga sutra* of Maharshi Patanjali. A *sutra* is a concise statement of truth or wisdom.

Maharshi Patanjali defines *yoga* as having eight limbs (*aṣṭanga*): The eight limbs of *yoga* are *yama, niyama, asana, pranayama, pratyahara, dharana, dhyana* and *samadhi*. Patanjali's *Yoga Sutra* is in Sanskrit language and it has been interpreted differently by many commentators which led to various misconceptions.

Yoga sutra of Maharshi Patanjali is not preliminary practices for a non-serious *sadhak* and has been transmitted from a very high level of consciousness. Even the so-called preliminary limbs of *yoga* described by Patanjali is actually a very high stage of consciousness and if one is able to follow *Yama* and *niyam* and remain in that state that itself is a high stage of *yoga*. It is important to note that while defining *yoga*, Patanjali is not calling *yama* and *niyam* as lower or higher but describes it as limbs of *yoga*. The various limbs of *yoga* described by Patanjali are not water-tight compartments but there is an organic wholeness in

it. Even *Dharana*, *Dhyan* and *Samadhi* are not very different stages but closely related to each other.

There are five *yama – Ahimsa*, *satya*, *Asteya*, *brahmcharya* and *aparigrah*. There is great misconception about interpretation of word *brahmcharya*. "*Brahma*" is a Sanskrit word and the root meaning of the word "*Brahma*" is that which contains unlimited creativity. *Brahma* is a name given to the Ultimate Reality by the Vedas because it is unlimited inexhaustible creativity. The word *Brahma* has not been used by Patanjali as a god as understood by some. The other part of the word in "*Brahmacharya*" is "*Acharya*". The word "*Acharya*" is derived from the root "*Chara*" - to walk, to move, to live. "*Charya*" means the way of living. *Brahmacharya* is the way of living in which you are always live and move in a state of constant awareness of the Ultimate reality i.e. Divinity. This seems to be the literal meaning of the word *Brahmacharya*. The word *Brahmacharya* has been narrowed down by some Indian and western interpreters to mean celibacy. Many great saints have successfully done yogic practices even in married life. Yogic practices and realisation of Ultimate Reality is possible even in a married life or sexual relationship if it is normal, sane & healthy and if it is not distorted, compulsive and obsessive. That is why married life is advised in *sant-mat*.

In fact, the purpose of *yoga* is to have *Brahmvidya* i.e. understanding of ultimate reality and those who are able to have that understating are called *Brahmgyani* and after they leave the mortal world are called *Brahmaleen*. *Gita* also talks about *brahmanirvana*. The word *Brahmanda* is used to mean the whole cosmos. It is pertinent to note that every chapter of *Gita* ends with the wordings "*Brahmvidya yogsastre shrikrishna-arjuna samvad*…." ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिशत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्योगोनाम .....ऽध्यायः

Another great misconception is about type of *asana* to be practised. It is important to mention that Maharshi Patanjali refers only one type of *asana* in 46th verse of *Yoga Sutra* II i.e स्थिरसुखमासनम् (*sthira sukham asanam*) i.e an *asana* is what is steady (motionless) and pleasant (without pain). There is no mention in the *Yoga Sutras* of moving between or even repeating poses. The Sanskrit word *asana* means "seat" and "posture." What it specifically did not mean is to stand up and move about.

Another misconception is about *Pranayam*. The *Pranayam* is made out of two words *prana* and *ayama*. *Prana* is generally confused by the breath. What is breath to the physical body, *prana* is to the *Sukshama Sarir*. Breathing exercises are not *pranayama*. *Pranayam* is the control over *prana* so that it can move in *naris* (*sushumana*, *ida*, *pingla*, etc.) and travel to various energy centres at our will.

Similarly, word *Pratyahara* has been misinterpreted. *Pratyahara* is not consciously closing one's eyes to the sensory world. *Pratyahara* marks the transition of *yoga* experience from first four limbs to last three limbs that perfect inner state. At the level *Pratyahara* one is able to detach the physical and *sukshama sarir* and get out of body experience. At *Pratyahara* stage, abstraction or detachment is established and the *sadhak* is able to detach the senses from the sense organs. What the western yogic thought understand as "cosmic consciousness" is the advanced stage of *dharana*, *dhyan* and *samadhi* which an individual progresses consciously from *Pratyahara* stage itself.

Dharana is not concentration. *Dhyana* is not contemplation, reflection etc. The *Dharana* that Patanjali refers happens when outer activity is stopped and there is absolute silence for small duration while in *dhyana* the duration of absolute silence or non-activity is ten times more and in *samadhi* the same is much more say hundred times more. Subjective impressions are those that normally cannot be seen by the physical eye. At *Pratyahara* stage one can make out the shape of certain patterns which can be interpreted. In *dharana* some patterns are seen as unclear pictures in black and white, and in *dhyana* these decoded patterns is seen as one sees images on a coloured computer screen. Such knowledge also yields great psychic powers and practically almost all the *sadhakas* start falling in trap of these psychic powers. The moment a *sadhak* get stuck in any psychic power and starts playing with the same, his progress stops there only.

By activating/balancing the *Chakras* one knows & understand the mysteries of the cosmos and lives in the state of continuous meditative attitude and even able to live a normal life and also meet normal obligations simultaneously. In the stage of *Pratyahara* onwards, mind is reduced to no-mind, and so whatever is revealed is direct, unborn knowledge, most difficult to explain. When one is free from impressions, even the most subtle, then eyes behold the Reality. When this state of

perception is itself also restrained or superseded, then is pure *samadhi* achieved. Cosmic impressions are held in *samadhi* with seed, leading to high knowledge of the entire *Brahmanda*. But *Brahmanda* is merely the Bubble, and when this is realized and then left behind, then it is pure *samadhi*, which is free from all impressions and one realizes Ultimate Reality. The communication of divine is not in any language as the man knows but communication is certainly there in the coded language which normal human being fails to decipher.

Patanjali defines *Isvara* (ईश्वर) in verse 24 of Book 1, as "a special Self (पुरुषविशेष, *puruṣavisesa*)". The word *Ishvara* is derived from the root "*Isha*"- to penetrate, to permeate, to permeate everything. Permeation means to enter it, to flood it with essence, to fill it with vitality. The Divinity Permeates. This Divine inner fragment (special self or real I) is the real Guru or real transcendental teacher.

Don't confuse silence with *dhyan* etc. Concentration is not *dharana*; meditation is not *dhyana* of Patanjali. Listening is not *shravan*. General person uses the word "*shravan*" as listening the spoken words with mind but actually it means listening the coded sound energy at Heart *chakra* (*Anahata*). English language is a poor translation of Sanskrit terms and even Sanskrit language is not true translation of what the seers actually meant by these words. The tragedy is that our scriptures were translated by English speaking people who do not had the grounding in the Indian traditions and they misunderstood the meanings conveyed therein.

There are many more misconceptions. Reality is not what it seems or that we see or feel directly with our five senses (sight, smell, touch, hearing and taste). Million of galaxies and stars, bacteria, radio waves etc. are there in the cosmos which we do not see or feel also exist. The neuroscientists have also come to the conclusion that our perception of reality has less to do what is happening in our outside world and more to do what is happening our inside. Our picture of external world is not an accurate representation. We see thing not as they are but as we are. Atoms have always existed, but it was only rather recently that we became sure of their existence. Light and sound takes time to travel. Sound travels much more slowly, which is why we see a firework burst in the sky noticeably earlier than we hear the bang. Light travels so fast that we normally assume anything we see happens at the instant we see it. But it is not so. Even the sun is eight light-minutes away. If the sun

blew up, this catastrophic event wouldn't become a part of our reality until eight minutes later. As for the next nearest star, *Proxima Centauri*, if you are able to look at it in 2021, what you are seeing is happening in 2017. The wonder, beauty and the joy of science and spirituality is that it goes on and on uncovering facts which we do not regard real. *Param-Sant* Kabir has beautifully put it-

बूंद समानी है समुन्दर में, जानत है सब कोई।
समुंदर समाना बूंद में, बूझे बिरला कोई।

Two-Fold Task: Love and *Chakra* Balancing

There is two- fold task before us. One you bring in your life emotional balance which is possible by following *yama* and *niyam*. But we have to understand *yama* and *niyam*. There is much confusion about *brhamcharya* which has been confined to continence which in fact means focusing your mind in Bramha i.e *Ishwar*, Guru etc. for higher purpose. This is why there is so much emphasis on correcting your way of living i.e. having correct & truthful *rahni sahni*. This is also necessary for removing *ahankar* (fake "I" consciousness) and flowering of love deep inside. This fake I consciousness keeps caged us into small compartment while you have the potential to belong to the whole universe. The clean mind free from all desires or conditionings or ego allows the universal divine to flow in and out of the human body without any hindrance. You have to understand that this fake I consciousness is a myth. Our fake I consciousness is creating a wall/barrier to this divine energy depriving us of the immense and eternal joy, peace, love and abundance. The great saint Kabir has beautifully put it:

जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तथ कह्यौ ग्यानी।।

If you leave out all the thing that is not love, there will be love and only love. Great sufi saint Rumi says we don't need to hunt for love outside ourselves. All we need to do is to eliminate the barriers inside that keep us away from love. The great saint Kabir has beautifully put it:

प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समांहि।

Second is increasing the intake of *prana* in the astral by activating /

balancing the *chakras* and allowing free flow of communication between various energy centres. On one side we have to activate the *chakras* in the *sukshama sarir* and on the other hand maintain proper functioning of endocrine glands (which are in fact master system for regulating all other system including brain and the nervous system). Activating/ balancing of *chakras* will lead to regeneration of parasympathetic system (Vagus nerve which is the master nerve). This can be achieved by synchronization of immediate inner and outer body i.e synchronisation of physical and *sukshama sarir* in order to remove the conflict and create a perfect harmony or rhythm to produce marvellous music/perfect balanced life. *Chakra* balancing also leads to flowering of love.

The main obstacle in these two tasks are the *granthis* (deep negative memories or emotions or patterns) which have been formed in the *sukshama sarir* leading to repetitive negative thoughts, emotions and actions. These *granthis* have been formed by collection of emotions (mainly negative) and their memory patterns over a very long periods of time (not confined to this life only).

Just as a block in the physical body lead to blockage in circulation of blood, in the *sukshama sarir*, these *granthis* are like blocks to the free flow of *prana* in the *sukshama sarir*. Now these *granthis* form at specific places connected with the *chakra* centres in the *Sukshama sarir* and this leads to disease in the physical at that same corresponding area. This *granthi* creates the disease. All the diseases have their root in the *sukshama sarir*.

These *granthis* will have to be removed or dissolved. *Prana* in the astral will have to be upgraded. For creating synchronization / rhythm and free flow of *prana*, the activating / balancing of *chakras* are required. We can regulate the function of the *chakras* through yogic practices. By working on one *chakra*, we affect the entire *chakra* system's balance and regulate *chakras* at multiple levels and achieve total health which is essential for spiritual progress. Removal or dissolution of *granthis* also bring about the inner biological development so necessary to withstand the higher vibrations when `it happens'.

Chakra System and Practices Adopted by Saints

There are various yogic practices to activate/balancing these *chakras*. But the problem with modern *hathyoga* (system of *yoga* which primarily

emphasises on physical body only) is that due to accumulation of memories of previous lives at *manipur chakra*, the flow of energy from *muladhar* to *sahasrar* is stuck at the *manipur chakra* and it takes lots of time and energy to cleanse this centre. Hence the saints following the *Sant-mat parampara* in their wisdom have used the method of bypassing the lower three *chakras* and start form heart *chakra* or *ajna chakra*. The girls and women are prohibited from practising at heart *chakra*.

There is no Escape from Pain and Pleasure

Human experiences are either pleasurable or painful. Pain and pleasure are experienced through contact of the mind with the objects through the senses which are the essential intermediaries between mind and objects. What is painful is avoided and what is pleasurable is indulged in. But, in the long run, what is pleasurable gives results that are painful and what at first seems painful gives results that are good, and, as such, the whole mode of living is readjusted. The misunderstanding, wailing and crying is of the body and mind and for the body and mind only.

Human being is both a computerized organism as well as divine fragment and the same is connected to a main server (Universal Divine or the Highest form of divinity you can imagine). Instead of communicating with the main Server you are indulging in brooding or day-dreaming which is like video games of the human brain. These games are very dangerous and has done great harm to the human structure. These games are repeated by human being and they create fear, doubt and anger. So, sitting in silence is to stop this destructive game which does not allow us to communicate with the universal Divine. Every grudge, hatred, fear, anger, inferiority complex, aggressiveness and anti social behaviours have roots deep within our mind which is called by modern psychologists as unconscious mind.

In Human Body *Ishvara* Resides

The *sadhaks* do not progress in their path because of the basic misunderstanding that *Ishvara* does not reside within our body and is simply somewhere outside in heaven. We have to remove the illusion of separation. In fact, *Ishvara* very much reside within our body and there is one Supreme *Ishvara* (*Parambrahm Parmatma*) which is omnipresent. omniscient, omnipotent. *Ishvara* within us is watching / witnessing all

our activities. In each individual is implanted super micro transmitting monitors to record thoughts, motives and actions and it is recording all our activities including physical, cerebral and mental and transmitting them in *Akashic* region where all the records of individuals (*Akashic* records) are maintained life after life. It is foolishness of the human race that it considers that its good works like charities etc. will be noticed and its bad works will not be noticed. Nothing is concealed from the eyes of one who can reach the *Akashic* region/*lok* where the *akashic* records are held. But studying the *Akashic* records is difficult as nothing is understood at first, for everything is coded in universal symbols (there being no language) and the symbols are difficult to decipher and there are chances of misunderstanding. Only when one is able to reach at the advance stage of *yoga* practice, one is able to decipher or decode it correctly. Man made languages and words are relevant only at the physical level. In *sukshama sarir* and higher levels you get messages only in coded languages and not in man-made languages.

We have within us *Ishvara*. Unless we first recognise this fact of existence of *Ishvara* within us, there can't be any transcendence. Only when the individual mind, the thinking instrument, the senses and the body, realize & understand that there is `something mighty' encased within, which has all the wisdom and power and help of *Ishvara* or divine or real guru's grace happens, the realization of Ultimate Reality or final liberation comes. *Paramsant* Kabir has beautifully put the same in his own style:

कस्तूरी कुण्डली बसै मृग ढूंढ़ै बन माहि।
ऐसे घटि घटि राम हैं दुनिया देखै नाँहि।।

Each of us has within us divine fragment (whatever name we give to it) existence of which is denied or ignored by us. The Universal Divine flows through or permeates and keeps all living being alive and makes all thinking instruments work. This Divine grace is constantly flowing and keeping us alive and kicking and we don't have an inkling of it. If this god grace is not flowing every for a second, the human and even other beings can't exist or operate. This is similar to electricity/battery power, if electricity / battery power is not there none of our appliances will work. All our appliances work with same electricity or battery power giving different performances depending upon the capacity of

instruments. We are totally unaware about this divine *leela*. So, each human has to mould his physical and mental instruments so that it gains maximum divine grace.

Incoming impulses enter through the *sukshama sarir* and flow through five senses and sense organs and thence flow in the *nadis* up the spine. In normal human being the base of the central spinal canal is closed and hence they rise by the set of twin *nadis ida* and *pingla* i.e corresponding nerves in the physical body running up the spinal cord to medulla oblongata and reach upto the base of the brain, *taluka*. But the advanced *yoga* practitioners are able to open and close the base point of the central spinal canal i.e *sushumna* and establish direct connection as per their will. This allows incessant flow divine grace without affecting the normal human functioning. The incoming impulses have colour. Sound and vibration in coded form and the identical memory pattern also have a code and are thus able to decode the incoming impulses and together they form meaningful recognition i.e negative thought picture (in the sense of photographic negative). Universal Divine is the sustaining and life-giving substance without which the incoming impulses and memory pattern can neither survive nor can act or germinate. You have just to participate in the worldly play with love, vigour, enthusiasm and joy elevating your actions from plane of *karma* to the plane of *leela*.

By sitting quietly at home, one can do much, so much that showing off to the world and doing social work is nothing in comparison. The change in outer environment of individual has only a temporary effect as the primary environment i.e inside of the individual is not changed. So first revolutionary step is to look or go to inside. First break the obsession with the outer world, break the inertia and try to enter inside. Unless you go deep inside, you will nor understand the game or divine *leela* that is happening outside and inside. This leads to understanding and love. Deep cleaning of garbage of desires is necessary. Silence is necessary so that garbage at least settles down at the bottom so that there is free flow of divine grace or Guru's grace. All courage you need is to just show up everyday (sit quietly with spine erect) and leave everything else on divine grace or Guru's grace.

–Brajesh Srivastava

ईश्वर प्राप्ति का यकीनी जरिया

1. जिक्र खफ़ी का जाप (दिल का जाप) किया करें।
2. नाजिन्स, गैर-आदमी और गैर-सोहबत के नक्शों से दिल को साफ रखें।
3. परमात्मा के सिवाय किसी की तरफ तवज्ज़ो न करें।
4. यकसुई और एकाग्रता के साथ दिल हाजिर रखने का इरादा करें।
5. सत और मालिक की तरफ उनसियत और लगाव हासिल करें।
6. अपने आप को मिटाकर उसी में महव और लय हो जाएं।
7. इसी काम में अपने को मिला दें। सबसे ज्यादा नजदीक रास्ता और असल पद पर पहुँचने का यकीनी जरिया है।

-(महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

एस ई 297–शास्त्री नगर,

ग़ाज़ियाबाद–201002

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : श्री उमा कान्त प्रसाद

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301